

समयसार, (गाथा ५० से ५५) । चौथा बोल है । तीन बोल आ गये हैं । टीका, टीका का चौथा बोल बाकी है । चिकना नहीं ? चिकना, क्या कहते हैं ? सूक्ष्म अधिकार है ।

(गाथा ५० से ५५ टीका का बोल-चार) (जो चिकना, रूखा, ठण्डा, गर्म, भारी, हल्का, कोमल अथवा कठोर स्पर्श है, वह सर्व ही जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ।)

यह आत्मा है, आत्मा ! वह अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड वस्तु है और जो अनन्त गुण हैं, वे उसकी शक्ति, उसका सत्व उसका भाव है । और जब इसका-(आत्मा का) अनुभव होता है, तब ही यह राग-चिकनाई, स्पर्श, वर्ण, रंग, गंध, आदि से भगवान् आत्मा भिन्न है । अतः जब अपना अनुभव होता है, तो पुद्गलद्रव्य जो है, उसका स्पर्श नाम का गुण है-चौथा बोल चलता है ।

पुद्गलद्रव्य है, उसका स्पर्श नाम का गुण है, उसकी आठ (प्रकार की) पर्यायें हैं, वे आत्मा में नहीं हैं, यह कहते हैं । जो चिकनाई है-चिकनाई वह गुण नहीं, चिकनाई स्पर्शगुण की पर्याय है, पर्याय अर्थात् अवस्था है । चिकना-रूखा यह भी स्पर्श गुण की रूखा एक पर्याय है । गुण नहीं । गुण तो स्पर्श है । आहाहा ! और ठण्डा, वह भी स्पर्श गुण

की पर्याय है, गर्म भी... समझ में आया ? पर्याय है भारी, वह भी स्पर्श गुण की पर्याय है, हल्की-कोमल और कठोर वह स्पर्श है, वे सभी जीव के नहीं हैं। समझ में आया ? आहाहा !

जीव, वह स्पर्श को कभी छूआ ही नहीं। आहाहा ! अपने द्रव्य-गुण और पर्याय को आत्मा चुम्बन करता है, छूता है परन्तु परद्रव्य या गुण या पर्याय को कभी भी स्पर्श नहीं करता। आहाहा ! समझ में आया ? यह तीसरी गाथा में आ गया है। समयसार तीसरी (गाथा)। अपना आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को चुम्बन करता है अर्थात् स्पर्श करता है-छूता है परन्तु परद्रव्य-कर्म को-शरीर को (किसी भी परवस्तु को) स्पर्श नहीं करता - छूता नहीं अनन्त काल में आत्मा। परद्रव्य-कर्म को, शरीर को चुम्बन नहीं करता-स्पर्श नहीं करता-छूता नहीं क्योंकि वह तो परद्रव्य है और परद्रव्य का अपनी पर्याय में अभाव है - परद्रव्य के द्रव्य-गुण-पर्याय का (आत्मा में) अभाव है। आहाहा ! परन्तु उनका अभाव है, ऐसा अनुभव में कब आता है ? यह कहते हैं कि ये चिकनाई आदि जीव के नहीं हैं क्योंकि वे पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से... जरा सूक्ष्म बात है।

पुद्गल-जो जड़ पुद्गल है, वह द्रव्य है और उसमें स्पर्शगुण है, वह गुण है; उसमें चिकनाई आदि पर्याय है, तो (ऐसे) द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों पुद्गलमय है। आहाहा ! वे आत्मा में हैं ही नहीं, परन्तु आत्मा में हैं नहीं कब इसका (आत्मा का) भान होता है ? (तब) यह कहते हैं। आहाहा ! वे पुद्गलद्रव्य के होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है। यह आत्मा जो द्रव्य है, इससे तो वे भिन्न हैं परन्तु भिन्न कब अनुभव में आता है ? आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म विषय है !

जैसे स्पर्शगुण पुद्गल का है। पुद्गल द्रव्य है और स्पर्श उसका गुण है और चिकनाहट आदि पर्याय है (ऐसे) अब आत्मा में... आत्मा द्रव्य है, उसके ज्ञान-आनन्द आदि गुण हैं और उसकी अनुभूति, वह उसकी पर्याय है। आहाहा ! अनुभूति अर्थात् आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है, उसका सम्यग्दर्शन के काल में अनुभव होता है तो उस आनन्द का वेदन होता है, उसे अनुभूति कहा जाता है। उसे सम्यग्दर्शन कहो, अनुभूति कहो, स्वरूप-आचरण कहो... आत्मा (शान्तस्वभावी) शान्ति जो स्वभाव में थी, वह पर्याय में व्यक्त हुई, उसे अनुभूति कहते हैं। आहाहा ! सूक्ष्म विषय है भाई !

भगवान आत्मा में... यहाँ छह बोल लेना है। एक पुद्गलद्रव्य जड़, उसका स्पर्श गुण और उसकी चिकनाहट, रूक्षता आदि पर्याय – इन तीनों आत्मा से भिन्न है। कब ? आहाहा ! कि अपना भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, उसमें अनन्त गुण हैं—ऐसी अन्तर्दृष्टि होती है, तब जो पर्याय में अनुभूति होती है, तब उसे भिन्न है—ऐसा अनुभव में आया। आहाहा ! पण्डितजी ! ऐसी बात है, भगवान ! बात तो ऐसी चीज़ है। आहाहा ! भगवान आत्मा !

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त ! पंच परमेष्ठी में आचार्य (पद में) वे पंच परमेष्ठी में आचार्य थे और उनकी टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य, वे भी पंच परमेष्ठी में आचार्य थे। जिन्हें सन्त कहने में आता है। सन्त उन्हें कहते हैं कि जिन्हें प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द की मोहरछाप अन्दर में हो। पाँचवीं गाथा में आया है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हमारा वैभव क्या है ? इस जगत के वैभव मानते हैं पैसा-धूल और शरीर को, वह तो धूल है, वह वैभव हमारा नहीं है। हमारा वैभव आत्मा... कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। मैं (चैतन्य) द्रव्य हूँ—मैं अनन्तगुण हूँ और उनका आश्रय करके मेरी जो अनुभूति-प्रचुर (स्वसंवेदन प्रगट हुआ...) सम्यग्दर्शन में आनन्द का स्वाद आवे परन्तु थोड़ा। सम्यग्दर्शन जो धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म की पहली शुरुआत... पहली कहते हैं न ? सब हिन्दी बहुत नहीं आती। गुजराती (बहुत) तो पहली शुरुआत में धर्म की (जो) दशा जब प्रगट होती है, तब तो पहले अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन पर्याय में अनुभव में (आता है-) अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। वह स्वाद पर्याय है। आनन्द वह गुण है और द्रव्य जो आनन्द आदि धरनेवाला वह द्रव्य है। आहाहा !

तो... आत्मा द्रव्य है, वस्तु। यह पैसा (रुपया) द्रव्य वह नहीं, हों ! आहाहा ! 'द्रवतिइति द्रव्यं'—जो द्रवित होता है—जो वस्तु कायम रहकर पर्याय को द्रवित होती है / परिणमित होती है। वह द्रव्य / आत्मा जिसने दृष्टि में लिया तो द्रव्य में जो आनन्द—जो गुण है वह पर्याय में—अनुभूतिरूप से आनन्द का अनुभव हुआ, तो वे द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों आत्मा के हैं। बीच में जो रागादि दया, दान आदि विकल्प उठते हैं, वह विकार है। उनसे भगवान आत्मा भिन्न है। आहाहा ! परन्तु भिन्न कब होता है ? कि द्रव्य की अनुभूति

करे, तब भिन्न होता है - भिन्न है - ऐसा ज्ञान होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है प्रभु! वीतरागमार्ग- जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ ( तीर्थकरदेव ) सीमंधर प्रभु महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ संवत् ४९ में कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, दो हजार वर्ष पहले वहाँ गये थे। आठ दिन वहाँ रहे और उन्हें जमीन से चार अंगुल ऊँचे चलने की रिद्धि थी। महाविदेह में आठ दिन रहे और वहाँ से आकर ये शास्त्र बनाये। आहाहा!

ये शास्त्र बनाये, इनके पश्चात् हजार वर्ष बाद एक अमृतचन्द्राचार्य हुये, उन्होंने यह टीका बनायी है। दोनों सन्त थे, दोनों पंच परमेष्ठी में अनुभूति का वैभव-आनन्द का वैभव (प्रचुर स्वसंवेदन) दशा जिन्हें अन्दर प्रगट हो गयी थी। आहाहा! जिनकी अतीन्द्रिय आनन्द की मोहरछाप... जैसे (पोस्ट) कार्ड में मोहरछाप लगाते हैं न, लिफाफे पर लगाते हैं; वैसे मुनिदशा में प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द की मोहरछाप पड़ती है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो अभी अनुभूति की बात चलती है। इससे (मुनि से) निचले दर्जे की बात। मुनि के दर्जे से अनुभूति की चीज़ चौथे गुणस्थान में नीचे की चीज़ है। जब सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है, तब उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। ज्ञायक चिदानन्द (पर जाती है)। निमित्त से भी हटकर, राग—दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का राग—उससे भी हटकर, पर्याय से भी हटकर त्रिकाल ज्ञायक पर दृष्टि जाती है। आहाहा! समझ में आया? तब उसे सम्यग्दर्शन होता है और तब उसे आनन्द की अनुभूति होती है। आहाहा! वहाँ से धर्म की शुरुआत होती है। यहाँ यह बात है, प्रभु! आहाहा! उस अनुभूति से भिन्न है। कहा न! ऐसा क्यों कहा? यह टीका तो गम्भीर है! चिकनाहट आदि वे सर्व जीव के नहीं हैं क्योंकि पुद्गलद्रव्य के परिणाममय... परिणाममय ऐसा क्यों कहा? कि जो चिकनाहट-रूक्षता आदि जो पर्याय है, वह पुद्गलद्रव्य के परिणामवाला (ऐसा) नहीं (परन्तु) परिणाममय-अभेद है। ये स्पर्श गुणादि हैं, इसकी पर्याय चिकना-रूखा (आदि) जो है, वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय (अर्थात्) उसके साथ अभेद है।

आहाहा! और आत्मा में आत्मा की अनुभूति है, वह आत्मद्रव्य के साथ अभेद है। सूक्ष्म बात है भाई! यह तो समयसार है। यह तो तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि है। उसे कुन्दकुन्दाचार्य सुनकर आये। (वे) सन्त थे, मुनि थे, भावलिंगी! वे प्रभु (तीर्थकर

सीमन्धरनाथ) के पास गये थे। भगवान तो अभी (महाविदेह में) विराजमान हैं। (वर्तमान में) विराजमान हैं। संवत् (४९) दो हजार वर्ष पहले की बात है। समझ में आया ?

(इसका आधार) जयसेन आचार्य की टीका में है-संस्कृत टीका है न! (पंचास्तिकाय) (टीका) जयसेनाचार्य की (में आधार है) कि भगवान (कुन्दकुन्द) वहाँ गये थे और (एक) दूसरा दर्शनसार में है। एक देवसेनाचार्य हुए उनका दर्शनसार (ग्रन्थ) छोटी पुस्तक है, उसमें श्लोक है कि प्रभु कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में जाकर यदि यह वस्तु (तत्त्वज्ञान) हमें दिया, यदि नहीं दिया होता तो हमें मुनिपना किस प्रकार प्राप्त होता! उनके दर्शनसार में है, दर्शनसार पुस्तक (अभी) यहाँ नहीं, रात्रि में कल निकाला था। यहाँ तो सब हजारों पुस्तकें हैं।

आहाहा! ये कुन्दकुन्दाचार्य भगवान भावलिङ्गी सन्त थे। (आत्म) अनुभवी, आनन्द को वेदन करनेवाले, (आत्म) वैभव स्वयं के अन्तर में प्रगट हुआ था, वे वहाँ गये थे। आहाहा! साक्षात् भगवान (सीमन्धर प्रभु) के दर्शन किये, कितना ही समाधान श्रुतकेवलियों के समीप किया। (वहाँ) श्रुतकेवली विराजते हैं न अभी? यह तो दो हजार वर्ष हुए...!

अभी भगवान विराजते हैं-वर्तमान में विराजते हैं। भगवान की कोटिपूर्व की आयु है पाँच सौ धनुष की देह है-दो हजार हाथ... भगवान वर्तमान में (देह सहित) मनुष्यरूप से विराजमान हैं। आहाहा! (कुन्दकुन्दाचार्य ने) वहाँ से आकर यह टीका (समयसार आदि ग्रन्थ) बनाये, टीका अमृतचन्द्राचार्य ने बनायी, तो (वे) कहते हैं प्रभु! एक बार सुन तो सही! आहाहा! (सब जीवों को) भगवानरूप से ही बुलाते हैं। ७२ गाथा में आया है... भगवान आत्मा! ऐसा ही कहते हैं। ७२ गाथा में है कि पुण्य और पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव, वे सब अशुचि हैं। ७२ गाथा (समयसार) कर्ता-कर्म अधिकार में कहते हैं अशुचि हैं। इतना कहकर अमृतचन्द्राचार्य टीका में कहते हैं भगवान आत्मा! आहाहा! (शुचि पवित्र है।) वह तो अशुचि से भिन्न निर्मलानन्दनाथ है। समझ में आया ?

आहाहा! जिन्हें सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो तो निर्मलानन्द प्रभु (आत्मा की) दृष्टि करनी पड़ेगी। उसकी दृष्टि निमित्त से हट जायेगी, राग-विकल्प जो है भक्ति आदि का, उससे भी दृष्टि हट जायेगी। भगवान की भक्ति आदि के जो (भाव हैं), वह तो राग है।

अपने स्वरूप की भक्ति (निज में) एकाग्रता, वह निश्चयभक्ति है—वह वीतरागी भक्ति है। आहाहा! समझ में आया ?

इस आत्मा में जब स्पर्श गुण की पर्याय नहीं और (पुद्गल) द्रव्य जो है, उसमें स्पर्श गुण है और चिकना-रूखा आदि पर्यायें हैं, वे पर्यायें पुद्गल से परिणाममय है—पुद्गल से तन्मय है। अपने जीव से भिन्न है परन्तु कब भिन्न है ? जब (आत्मा की) अनुभूति होती है तो भिन्न है, वरना (ऐसा का ऐसा) मानना-धारणा की, आहाहा! धारणा में (तो) ऐसा किया कि ये रागादि-स्पर्श आदि आत्मा से भिन्न है। यह कोई वस्तु नहीं। जब आत्मा की अनुभूति होती है, तब भिन्न यथार्थ भान में आता है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, देखो! ये परिणाममय होने से। है ? एक-एक शब्द में महान शक्ति (भाव) है। अभी तो चौथे बोल की-स्पर्श की (बात) चलती है। चौथा बोल चलता है। परिणाममय होने से... आहाहा! कौन ? चिकनाई, रूक्षता आदि, जो शीत-उष्ण, ये सब पुद्गल की पर्यायें पुद्गलमय है, (अपनी) अनुभूति से भिन्न है। आहाहा! अपनी अनुभूति से भिन्न है; द्रव्य से भिन्न है - ऐसा नहीं कहा। जीव द्रव्य से भिन्न (नहीं कहा)। क्योंकि भिन्न तो द्रव्य से है ही, परन्तु उसकी अनुभूति हुए बिना भिन्न है - ऐसा अनुभव में नहीं आता। आहाहा!

यह स्पर्श है न ? ठण्डा, गर्म, हल्का-भारी, चिकना-रूखा, यह सब पुद्गल में पुद्गल के परिणाममय, यह पर्याय पुद्गल से अभेद है, उसके साथ (अभेद है)। परन्तु (ये पर्यायें) आत्मा में नहीं है। आत्मा भगवान, आत्मा में नहीं तो कब नहीं ? कि जब इसका (आत्मा का) अनुभव होता है—ज्ञायक शुद्ध चैतन्यघन प्रभु परमस्वभावभाव, पारिणामिकभाव, सहजात्मस्वरूप प्रभु (आत्मा) द्रव्य की दृष्टि करने से, (उसका ज्ञान करने से) ज्ञान का लक्ष्य वहाँ ले जाने से, पर्याय में जो आनन्द का अनुभव होता है—ज्ञान की व्यक्तता होती है, ज्ञान की व्यक्तता-समकित होता है, वीर्य की व्यक्तता होती है, निर्मलस्वरूप की रचना करे, ऐसी व्यक्तता होती है, उसे यहाँ अनुभूति कहते हैं। अरे! भगवान! समझ में आया ?

यह तो हिन्दी कहते हैं न! यह तो हिन्दी में आया न! हमारे पण्डितजी आये हैं न! आहाहा! मार्ग ऐसा है भगवान! आहाहा!

अनुभूति से भिन्न है... अनुभूति से भिन्न है। द्रव्य से भिन्न है - ऐसा नहीं कहा। अपने जीवद्रव्य से पुद्गल के परिणाममय जो चिकनाहट-रूक्षता (आदि है), वह जीवद्रव्य से भिन्न है - ऐसा नहीं कहा। क्योंकि जीवद्रव्य से तो भिन्न ही है परन्तु भिन्न कब अनुभव में आवे? आहाहा! अपने आत्मा का अनुसरण करके अनुभूति... चैतन्यमूर्ति भगवान् पूर्णानन्द जिनबिम्बस्वरूप, जिनस्वरूप... 'घट घट अन्तर जिन बसै, घट घट अन्तर जैन'—घट घट अन्तर जिन बसै (अर्थात्) भगवान् जिनस्वरूपी ही अन्दर विराजमान है। आहाहा! कब? अभी, हाँ! 'घट घट अन्तर जिन बसै, घट घट अन्तर जैन'—इस घट में अन्दर जिनस्वरूप (वीतरागस्वरूप आत्मा) है, उसकी एकाग्रता से अनुभूति होती है, तब उसे जैन कहने में आता है। आहाहा! बाकी तो बाड़ा में (सम्प्रदाय में) जैन नाम धरावे, वह कोई चीज नहीं। आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसै' (यह पद) बनारसीदास (का) समयसार नाटक (का है)। समयसार कलश टीका (में से बनाया है)। ओहोहो! घट घट अन्तर जिन बसै' (अर्थात्) इस देह (देवल में) मन्दिर में भगवान् (आत्मा विराजमान है)। यह (देह) तो श्मशान की धूल है, अन्दर (सूक्ष्म) कर्म धूल-मिट्टी है। आहाहा!

पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव वे तो पुण्य-पापतत्त्व भिन्न हैं। यह नवतत्त्व हैं न?—तो शरीर, कर्म अजीवतत्त्व है; दया, दान, व्रत, भक्ति पुण्यतत्त्व है; हिंसा, झूठ, चोरी, यह पापतत्त्व है। भगवान् आत्मा इस अजीव और पुण्य-पापतत्त्व से भिन्न ज्ञायकतत्त्व है। आहाहा! इस ज्ञायकतत्त्व का जब अनुभव होता है। आहाहा! यह चिदानन्द प्रभु, सहजात्मस्वरूप-सहजानन्द, यह सहजानन्द का कन्द प्रभु, इसका आश्रय करके-इसका अवलम्बन लेकर जो पर्याय में-दशा में आनन्द का अनुभव हुआ, उसका नाम (स्वानुभूति-सम्यग्दर्शन है)।

(सभा के बीच में बच्चों का शोरगुल सुनकर) कौन है? लड़कों को बाहर ले जाओ।

भाई! यह तो समयसार है और इसका एक-एक श्लोक (गाथा) अलौकिक है! भगवान्! समय अर्थात् (शुद्ध) आत्मा, उसका सार! इन दया, दान, व्रत के राग से भी भिन्न भगवान् है। आहाहा! यह आत्मा आनन्द प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा (है)। सत् अर्थात्

शाश्वत् रहनेवाला, चित् अर्थात् ज्ञान और आनन्द अर्थात् सुख-शान्ति, यह सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा अन्दर है। आहाहा! इसकी ओर का झुकाव करने से... अनादि का झुकाव तो राग और पर्याय के प्रति है - अंश के प्रति और राग के प्रति... पर्याय एक अंश है, वह पूरी चीज़ नहीं है। यह अनादि से एक समय की पर्याय और राग-दया, दान के विकल्प शुभ हैं, उन पर अनादि की दृष्टि है, यह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! 'पञ्जयमूढा हि परसमया' एक समय की पर्याय मेरी है, वह भी पर्यायमूढ़ जीव है। आहाहा! और राग-दया, दान मेरे हैं (-ऐसा अभिप्रायवाला तो) महामूढ़ है। आहाहा!

जो एक समय की पर्याय है, वह तो नाशवान है। भगवान (आत्मा) अन्दर ध्रुव अविनाशी त्रिकाली चैतन्यघन है। उस चैतन्यघन की दृष्टि करने से, पर्याय की दृष्टि छूट जाती है, तब (आत्मा का) अनुभव होता है। उस अनुभूति से स्पर्शगुण की पर्याय भिन्न है, तब जानने में आया। समझ में आया? आहाहा! एक बोल, यह चौथा बोल हुआ।

(अब) पाँचवाँ (बोल) **स्पर्शादि सामान्य-परिणाममात्र रूप है...** अब क्या कहते हैं? देखो! स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण / रंग ये चार सामान्य हैं। है? **स्पर्शादि सामान्य-परिणाममात्र रूप...** उसे रूप कहते हैं। (रूप) क्यों कहते हैं? कि रंग, गंध, रस और स्पर्श, ये चार सामान्यरूप जो है, उसे रूप कहते हैं। आहाहा! यह तो सूक्ष्म बात है भाई! यह तो भगवान की वाणी सूक्ष्म है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि जो **स्पर्शादि...** आदि शब्द कहा है न! स्पर्श, गंध, रस और रंग ये चार लेना। स्पर्शादि सामान्य एकरूप परिणाममात्र-एकरूप उसे 'रूप' कहते हैं। परमाणु-पुद्गल में स्पर्श, गन्ध, रस, वर्ण / रंग इन सामान्य को यहाँ 'रूप' कहते हैं। यह रूप है। है?

वह रूप जीव का नहीं है। इस रूप (में) जो चार पर्यायों एक साथ कही, द्रव्य के गुण की पर्याय सामान्य, उसमें एक-एक (पर्याय) ली थी। रंग, गन्ध, रस, स्पर्श एक-एक (पर्याय)। अब इन चार का एकरूप सामान्य, आहाहा! उसे रूप कहते हैं। इस रूप से भगवान आत्मा भिन्न है। आहाहा! अब इस शरीर की हड्डियाँ और माँस वे तो जड़ हैं - मिट्टी हैं, वे आत्मा में नहीं हैं, आत्मा में वे नहीं, उनमें आत्मा नहीं। क्या कहा? यह जो हड्डियाँ, माँस (चमड़ी) है, वह जड़-पुद्गल की पर्याय है। यह ऊपर दिखे वह। इसमें



आत्मा नहीं और यह आत्मा में नहीं। आहाहा! वीतरागी जैनदर्शन का तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है भाई! यह अन्यत्र कहीं-वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। किसी पंथ में यह मार्ग नहीं है। आहाहा!

ऐसा पंथ! यह सूक्ष्म! आहाहा! गजब बात है भाई! ऐसी सूक्ष्मता श्वेताम्बर में भी नहीं क्योंकि वे तो-श्वेताम्बर तो दो हजार वर्ष पहले दिगम्बर में से भिन्न पड़ गये, दृष्टि विपरीत होकर (भिन्न पड़ गये), फिर शास्त्र बनाये। भगवान! उनमें यह बात नहीं है। यह तो सन्त-दिगम्बर (भावलिङ्गी) मुनि, केवली के पथानुगामी! आहाहा! उनकी (साक्षात् तीर्थंकर की) दिव्यध्वनि में से जो ग्रहण किया और उन्हें स्वयं की वाणी में आया... वहाँ तो ऐसा कहते हैं-कुन्दकुन्दाचार्य (ऐसा कहते हैं समयसार में कहते हैं कि) मैं मेरा अपना वैभव कहूँगा; भगवान कहते हैं, इसलिए कहूँगा - ऐसा नहीं; मैं मेरे अनुभव से कहूँगा - ऐसा कहा है। समझ में आया ?

और श्वेताम्बर में तो ऐसा आता है... हमने तो सब देखा है न? मैंने तो सुना है (उनके शास्त्र में) सुधर्मस्वामी कहते हैं, भगवान ऐसा कहते थे, ऐसा कहते हैं (वे)। यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मैं तो मेरे निजवैभव से कहूँगा। भगवान कहते हैं, इसलिए कहूँगा - ऐसा नहीं है। आहाहा! मेरी अनुभूति-आत्मा की आनन्द की-मुझे प्रचुर स्वाद आया है। आहाहा! चौथे गुणस्थान में समकित्ती को आनन्द आनन्द है परन्तु थोड़ा है। पंचम गुणस्थान में सच्चा श्रावक जिन्हें कहें... यह बाड़ा के श्रावक है, वे तो श्रावक हैं ही नहीं। जिन्हें पंचम गुणस्थान दशा समकित सहित अन्दर की शान्ति की वृद्धि हुई है, ऐसे पंचम गुणस्थान में जो अनुभूति है, वह आनन्द का स्वाद चौथे (गुणस्थान) की अपेक्षा विशेष है। उनसे भी विशेष अतीन्द्रिय (आनन्द) मुनिराज को है। इसीलिए तो (मुनिराज) कुन्दकुन्दाचार्य ने (समयसार) पाँचवीं गाथा में कहा—हमें प्रचुर स्वसंवेदन (वर्तता) है। प्रचुर शब्द टीका में कहा है। पाँचवीं गाथा (की टीका में) है। समझ में आया? आहा! सूक्ष्म बात है प्रभु! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है प्रभु! आहाहा!

यह (आत्मा की) अनुभूति—अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद—उग्र (वर्तता है) उसे मुनिपना है। मुनिपना कोई नग्नपना और या पंच महाव्रत की क्रिया, वह कोई मुनिपना नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ यह कहते हैं, उस 'रूप' से मैं भिन्न हूँ। वह रूप पुद्गलद्रव्य के परिणाममय... परिणामवाला भी नहीं। पुद्गलद्रव्य के परिणाममय... ऐसे वर्ण, गंध, रस, स्पर्शरूप वह सब रूप-वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय—पुद्गलद्रव्य की पर्यायों का (एकपना) रूप-अभिन्न, ऐसा होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है। आहाहा! अकेले आत्मा से भिन्न है - ऐसा नहीं। रूप मुझसे भिन्न है ऐसा नहीं। रूप मैं अरूपी भगवान आत्मा प्रभु से भिन्न, ऐसा नहीं (परन्तु) उसकी (आत्मा की) अनुभूति हो, आनन्द का स्वाद हो - ऐसी अनुभूति से वह रूप भिन्न है। आहाहा! ऐसा भेदज्ञान बताया। भगवान! ऐसा है भाई! लोग मानें न मानें, वस्तु तो यह है। समझ में आया? आहाहा! दो बोल हुए। हो गये न! (बोल) पाँच हुए न!

छठवाँ—जो औदारिक शरीर... है, यह औदारिक शरीर है, इससे भगवान आत्मा अन्दर भिन्न है। (यह शरीर-देह) यह तो मिट्टी है। पुद्गल-अस्तिकाय, इतने में तो अनन्त स्कन्ध हैं, रजकण-परमाणु, आहाहा! अनन्त स्कन्ध, उसमें अनन्त परमाणु और एक परमाणु में अनन्त गुण। जितनी संख्या में आत्मा में गुण हैं-अनन्त चैतन्य गुण हैं, उतनी संख्या में एक परमाणु में जड़ गुण हैं। आहाहा! सब पुद्गल का यह औदारिकशरीर है। इससे भगवान (आत्मा) भिन्न है। कब? कि भिन्न तो है परन्तु आत्मद्रव्य का अनुभव हो-आनन्द का (अनुभव हो), तब भिन्न है - ऐसा भान हुआ। आहाहा!

यह तो शूरवीर का काम है। वीर का मार्ग है शूरों का, कायर का वहाँ काम नहीं। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा (कहते हैं)। वह सन्त कहते हैं—वे परमात्मा ही हैं, परमेष्ठी हैं, अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य (आदि) दिगम्बर सन्त कोई भी हो, सब परमेष्ठी हैं। वे ऐसा फरमाते हैं कि तुम औदारिकशरीर से भिन्न हो-एक बात (दूसरी बात) औदारिकशरीर जो है, वह पुद्गल की पर्याय है। वह पुद्गल की पर्याय है, पर्याय, हों! गुण नहीं; गुण तो अन्दर त्रिकाल रहते हैं। पुद्गल त्रिकाल रहता है, वैसे गुण भी त्रिकाल रहते हैं और यह पर्याय तो एक समय की भिन्न-भिन्न है। यह औदारिक (शरीर), यह पर्याय है। इसे मैं चलाऊँ या हिलाऊँ, यह आत्मा में है ही नहीं; आत्मा औदारिकशरीर को हिला सकता है? या दूर कर सकता है? हाथ से (पुस्तक के) पृष्ठ फिरा सकता है? ऐसी (शक्ति) आत्मा

में है ही नहीं। पण्डितजी! जयपुर के प्रोफेसर पण्डितजी है। जयपुर के बड़े प्रोफेसर हैं, यहाँ रहते हैं, छोड़ दिया, छोड़कर (यहाँ हैं)। आहाहा!

क्या कहते हैं? यह औदारिकशरीर जो पुद्गल की पर्याय है। यह (देह) तो परमाणु की पर्याय है, इससे भगवान (आत्मा) भिन्न है। कब? आत्मा आनन्दस्वरूपी है—ऐसी दृष्टि करके चैतन्य ज्ञायक नित्यानन्द प्रभु की दृष्टि करके जिसने (अपनी) पर्याय में आनन्द का अनुभव होना-अनुभूति होना-जिसमें शान्ति का स्वाद आवे, तब उसे उस अनुभूति में यह औदारिकशरीर भिन्न जानने में आया। समझ में आया? आहाहा! ऐसा कहे कि यह औदारिकशरीर मेरा नहीं (शरीर पर है) यह तो एक धारणा कर ली। समझ में आया? यह शरीर मुझमें नहीं-शरीर जड़ है परन्तु यह तो (मन में) धारणा, यह वस्तु (अनुभूति) अनुभव नहीं हुआ। आहाहा! ऐसा तो अनन्त बार किया है। ग्यारह अंग पढ़ा-अनन्त बार पढ़ा, वह कोई चीज़ (स्वानुभव) नहीं है। आहाहा! आहाहा! मुद्दा-माल की बात है। बापू! यहाँ एक-एक लाईन! एक-एक शब्द गजब है! समयसार! भगवान तीर्थकर की साक्षात् वाणी! अजोड़-अजोड़ है! आहाहा! दिव्यचक्षु (कहलाता है)। आहाहा!

कहते हैं कि औदारिकशरीर, जीव में नहीं है। कब? जब जीव का अनुभव होता है कि यह जीव (आत्मा) है। है उसका अनुभव हो तो है न उसको। जीव तो त्रिकाली (है वह है) परन्तु उसकी पर्याय में उसका अनुभव हो, तब ऐसा मालूम पड़ता है न! है तो त्रिकाली! निगोद के जीव में भी पर्याय में अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान का विकास होने पर भी द्रव्य तो वहाँ परिपूर्ण है। भगवान तो परिपूर्ण द्रव्य है और पर्याय में केवलज्ञान हुआ, तब द्रव्य तो परिपूर्ण ही है। आहाहा! यह द्रव्य (आत्मद्रव्य) परिपूर्ण है, इसमें कभी भी हीन(-अधिकपना) या न्यूनाधिकता कभी नहीं होती। त्रिकाली ज्ञायकमूर्ति ध्रुव प्रभु नित्यानन्द ज्ञायक में औदारिक शरीर नहीं है। इस औदारिक में (जो जो) क्रिया होती है, वह मुझमें नहीं है, वह क्रिया होती है, वह मुझसे नहीं।

तो... मैं क्या हूँ? कि मैं तो अनुभूति, चैतन्यस्वरूप त्रिकाल का अनुसरण करके - उसे अनुसरण करके होनेवाला अनुभव हुआ, वह ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि जितने जो अनन्त गुण हैं। आत्मा में अनन्त गुण कितने हैं? कि लोक (अलोक) के आकाश का

अन्त नहीं, यह चौदह ब्रह्माण्ड हैं, वे तो असंख्य योजन में हैं और पश्चात् आकाश... आकाश... आकाश... आहाहा! अन्त नहीं; अन्त है तो फिर क्या? तो ऐसा अलोक-अन्तरहित, दसों दिशाओं में (अनन्त अनन्त आकाश है तो) उसके जितने प्रदेश हैं... एक परमाणु जितनी जगह में रुके उसका नाम प्रदेश... तो ऐसा जो अन्तरहित आकाश, उसके जो अनन्त प्रदेश हैं, उनसे अनन्तगुणे एक आत्मा में गुण हैं। आहाहा! अरे रे! समझ में आया? उतने अनन्तगुणे एक परमाणु में गुण हैं। आहाहा!

एक आकाश नाम का पदार्थ है, जिसका कहीं अन्त नहीं, दसों दिशाओं में ऊपर- (नीचे) कहीं अन्त नहीं। ऊपर अन्त हैं कही? अन्तरहित (आकाश में) इतने प्रदेश अनन्त-अनन्त हैं, उसके अनन्त गुण तो आकाश प्रदेश में हैं, प्रदेश अनन्त हैं परन्तु उसमें अनन्तगुणे तो गुण हैं। आहाहा! और इस भगवान आत्मा में, प्रदेश से अनन्तगुणे जितने गुण (कहे) वे (आकाश के) अनन्तगुणे गुण से अनन्तगुणे गुण आत्मा में है। अनन्त प्रदेश, वे अनन्त गुण, उनसे भी अनन्त गुण हैं। अनन्त प्रदेश है, एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण ऐसे आत्मा में यहाँ अनन्त गुण हैं। ऐसा कहाँ! (ऐसा सूक्ष्म जानना चाहिए) हैं! जानना सब चाहिए, जानना तो... नहीं तो इसे छुटकारा नहीं आयेगा। बापू!

आहा! भव का अन्त (लाना), भव कर-करके—एक निगोद में एक श्वाँस में अठारह भव! बापू! यह क्या है भाई! आहाहा! प्रभु तो ऐसा कहते हैं, 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' में लिखा है—नरक में प्रभु! तूने इतना दुःख सहन किया है कि तेरे एक क्षण का दुःख करोड़ों जीभों और करोड़ों भवों में न कहा जा सके, प्रभु! तूने इतना दुःख सहन किया। ऐसा तो एक क्षण का, हों! ऐसा-ऐसा तो तैंतीस-तैंतीस सागर! प्रभु! तू वहाँ रहा। आहाहा! इतना दुःख सहन किया तो भी अन्दर (आत्म) द्रव्य में कोई कमी नहीं हुई। द्रव्य तो पूर्णानन्द का नाथ भरा है (परिपूर्ण है)। आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि इस औदारिक (शरीर से) भिन्न है परन्तु वह भिन्न है यह क्या? कि द्रव्य है (आत्मद्रव्य है) वस्तु है, उसमें अनन्त गुण हैं। आकाश के प्रदेश से भी अनन्तगुणे गुण हैं।

उन अनन्तगुणे गुण का धारण करनेवाला भगवान आत्मा (है)। जब उसकी दृष्टि करता है, पर से (दृष्टि) उठाकर, सबसे (दृष्टि) हटाकर, तब पर्याय में जितने गुण हैं, उतने

गुण में पर्याय में व्यक्त-प्रगट अंश दशा प्रगट होती है। जितने अनन्त गुण हैं, उतने अनुभूति में उन अनन्त गुण की व्यक्त दशा—एक समय में अनन्त गुण की व्यक्त दशा—अनन्त प्रगट होती है। समझ में आया ? आहाहा ! अरे ! ऐसी बातें वीतराग के अतिरिक्त कहाँ हैं, बापू ! वेदान्त और (दूसरे) भले बातें सब करें, (वे) लोग आत्मा.. आत्मा.. (परन्तु) (कुछ है नहीं)।

**श्रोता :** वीतराग के अतिरिक्त कोई कह नहीं सकता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सर्वज्ञ ने देखा है, उन्होंने कहा है वह है। जिसमें सर्वज्ञ ही नहीं, उन्होंने तो सब बातें कल्पना से की है। यह तो तीन लोक के नाथ, सर्वज्ञ जगत में तीन लोक के ज्ञाता सर्वज्ञ ! सर्वज्ञ का विरह जगत में तीन काल में कभी नहीं होता। क्या कहा ? तीन काल में तीन लोक के जाननेवाले का-केवली का तीन काल में विरह नहीं होता। भूतकाल में रहे हैं, अभी हैं और भविष्य में रहेंगे। समझ में आया ?

क्या कहा ? तीन काल और तीन लोक में, तीन काल और तीन लोक के जाननेवाले का कभी भी विरह नहीं होता। भूतकाल में भगवान (अरिहन्त) थे, वर्तमान में हैं और भविष्य में भी रहेंगे। आहाहा ! समझ में आया ? उन सर्वज्ञ भगवान ने सर्व देखा जाना, वह वाणी में आया ? आहाहा ! इन सन्तों ने यहाँ बात कही, आढ़तिया होकर (बात कही) माल सर्वज्ञ का है। ये सन्त-अनुभवी (तो) केवली के पथानुगामी-आढ़तिया होकर (बात करते हैं)। आढ़तिया समझते हो ? व्यापारी... आहाहा ! आढ़तिया होकर (सन्त, सर्वज्ञ का माल) जगत को देते हैं कि यह मार्ग है, यह वस्तु है। आहाहा ! प्रभु ! मानना तेरे अधिकार की बात है, वस्तु तो ऐसी है। आहाहा !

औदारिक, वैक्रियिक आदि शरीर है नारकी, देवों को वैक्रियिक शरीर होता है, वह भी पुद्गल की पर्याय है। भगवान (आत्मा) अन्दर उससे भिन्न है।

वह कब भिन्न है ? कि अनुभूति हो, तब भिन्न है, ऐसी (खबर) मालूम होता है। आहाहा ! विषय, बापू ! यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ (तीर्थकर सर्वज्ञ)... आहाहा ! भाई ! जिन्हें इन्द्र सुनने आते हैं। इन्द्र-सौधर्म देवलोक का इन्द्र, एक भवतारी है। सौधर्म देवलोक है न ! बत्तीस लाख विमान, एक-एक विमान में असंख्य देव ! किसी (विमान

में) थोड़े भी-संख्यातवाले हैं। थोड़े संख्य विमान, थोड़े, असंख्यातवाले बहुत हैं। उनका स्वामी सौधर्मइन्द्र अभी है, एक भवतारी है। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष में जानेवाला है। ऐसा सिद्धान्त में लेख है। और उसकी पटरानी इन्द्राणी है, वह भी एक भव करके मोक्ष जानेवाली है। वह जब सुनने आता है-सुनने आता है, वह वाणी कैसी होगी! तीन ज्ञान, एकावतारी, बत्तीस लाख विमान का स्वामी, (यह सब) छोड़कर भगवान की वाणी सुनने आता है, आहाहा! वह वाणी कैसी होगी! भाई! लो! दया पालो, व्रत करो, ऐसी (होगी)? ऐसी बातें तो कुमार भी करता है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा का कहा हुआ, सन्त जगत को कहते हैं। वैक्रियिकशरीर से तू भिन्न है, आहारकशरीर से भी तू भिन्न है। **आहारकशरीर** मुनि को होता है। उस आहारकशरीर से तू भिन्न है। आहाहा! कब? अनुभूति होवे तब। आत्मा अनन्त-अनन्त आनन्द का सागर प्रभु, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द लबालब भरा है। भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय स्वच्छता, अतीन्द्रिय ईश्वरता... आहाहा! पूर्ण भरी है-ऐसा दृष्टि में, अनुभव में / अनुभूति में होवे, तब इस आहारकशरीर से भिन्न है-ऐसा भान हुआ।

**तैजसशरीर** से भिन्न है। अन्दर एक तैजस शरीर है न! उससे (आत्मा) भिन्न है। **कार्माणशरीर** से भिन्न है। देखो! आहाहा! कार्माणशरीर है। विशेष कर्म की प्रकृति १४८ होती है परन्तु सामान्य प्राणी को १४८ नहीं होती। आहारक, यह नहीं होती तीर्थकरपद (प्रकृति नहीं होती)। उसे थोड़े ही होती है परन्तु वह सब कार्माणशरीर पूरा पिण्ड है, उसकी जो पर्याय-कार्माणशरीर है, वह जड़ की पर्याय है। (पुद्गल) द्रव्य है और द्रव्य के गुण हैं, वे तो शाश्वत् हैं परन्तु कार्माणरूप पर्याय होती है, वह तो अवस्था है।

क्या कहा? कार्माणशरीर की पर्याय क्यों कहा? कि जो अन्दर परमाणु वस्तु है (वह तो) अन्दर कायमी चीज़ है और उसमें रंग, गंध, वर्ण, स्पर्श (आदि) गुण हैं, वे भी कायमी हैं और यह जो कर्म की पर्याय है, वह तो पर्याय है-अवस्था है। अवस्था बदल जाती है। प्रतिसमय बदलती है और कोई तो कार्माणशरीर की पर्याय बदलकर अकर्मरूप पर्याय हो जाती है। यह कार्माणशरीर पुद्गल की पर्याय है। आहाहा! इससे भगवान आत्मा भिन्न है। कार्माणशरीर से (आत्मा) भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा में कर्म हैं ही नहीं, कर्म में आत्मा है ही नहीं। कर्म, कर्म में रहे; भगवान, भगवान में है। आहाहा! लोग कहते हैं न, हमें कर्म हैरान करते हैं, (यह) बिल्कुल झूठ बात है। कर्म जड़ है। जड़, आत्मा को स्पर्श भी नहीं करता; आत्मा, जड़ को स्पर्श भी नहीं करता। तू तेरी उल्टी-विपरीत दृष्टि से हैरान होता है। समझ में आया? तुझे तेरा भान नहीं कि मैं कौन हूँ? मैं राग हूँ या मैं एक समय की पर्याय हूँ, मैं पुण्य करनेवाला हूँ—दया, दान करनेवाला हूँ और पाप का करनेवाला मैं हूँ—ऐसी मान्यता (अभिप्राय) है तो तेरी दृष्टि विपरीत है। कर्म ने कहीं वह दृष्टि विपरीत करायी है - ऐसा नहीं है। समझ में आया?

भक्ति में आता है-भजन में आता है-भक्ति (में) 'कर्म विचारै कौन भूल मेरी अधिकाई'-कौन समझे? यह तो कर्म के कारण विकार होता है-कर्म के कारण (जीव) भटकता है-ऐसा माना करता है। यहाँ तो कहते हैं कर्म, शरीर ही तेरी चीज में (आत्मा में) नहीं है। आहाहा!'कर्म विचारै कौन भूल मेरी अधिकाई'-मैंने भूल की, इससे मुझमें दोष हुआ; कर्म से कोई भूल नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

उसमें आता है न!

**'कर्म विचारै कौन भूल मेरी अधिकाई,  
अग्नि सहै घनघात, लोह की संगत पाई'**

अग्नि अकेली होवे तो घन नहीं पड़ते, परन्तु अग्नि लोहे के संग में जाती है तो घन पड़ते हैं। (इसी प्रकार आत्मा) कार्माणशरीर का लक्ष्य करता है तो आत्मा दुःखी होता है। आहाहा! अभी तो ऐसा चला है कि कर्म के कारण विकार होता है और कर्म हटे तो आत्मा में गुण होता है... बिल्कुल झूठ बात। आहाहा! कर्म तो जड़ हैं, वे आत्मा में हैं ही नहीं। आत्मा में हैं ही नहीं, वे आत्मा को नुकसान करेंगे? आहाहा! और कर्म का कुछ क्षयोपशम होवे तो आत्मा में ज्ञान होता है, यह झूठी बात है। अपनी-स्वयं की पर्याय में निर्मलता प्रगट होवे तो क्षयोपशम होता है, वह स्वयं से होता है। आहाहा! यह कहते हैं देखो, कार्माणशरीर है, वह सर्व ही... पाँच (प्रकार के) शरीर हैं, यह कहा न। सर्व ही जीव का नहीं है... वे समस्त ही (शरीर) जीव के नहीं हैं। आहाहा! क्यों? कि वे पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से... आहाहा! यह कार्माण (आदि) शरीर पुद्गलद्रव्य की पर्याय है। आहा! समझ में आया?

(कर्म की) १४८ प्रकृति है और अन्तर्भेद-आठ कर्म के अन्तर्भेद १४८ हैं। उत्कृष्ट हो उसके। समकिति के। किसी मिथ्यादृष्टि को आहारकशरीर और तीर्थकर प्रकृति भी नहीं होती, परन्तु उत्कृष्ट किसी को होवे तो १४८... आहाहा! दूसरे को १२० और १२२, १२२ सत्ता में हो, १२० उदय में हो-यह जरा सूक्ष्म बात है, और समकिति हो, उसे १४८ भी प्रकृति हो। समझ में आया? परन्तु वे सब प्रकृति कार्माण की पर्याय है, जिसे ज़हर का वृक्ष कहा है। समयसार में पीछे १४८ प्रकृति विषवृक्ष है - वह प्रकृति ज़हर है। भगवान (आत्मा) अमृत का कल्पवृक्ष है। भगवान आत्मा तो अमृत का... आहाहा! कामधेनु आत्मा है, जब-जब चाहे तब-तब अमृत / आनन्द आता है। आहाहा! परन्तु यह आत्मा पर से भिन्न ऐसी पर्याय, द्रव्य की ओर झुकी और अपने में से आनन्द का अनुभव हुआ और अनन्त गुण की एक समय में अंशरूप व्यक्तदशा अनुभव में आयी, अकेले आनन्द का अनुभव (ऐसा) नहीं - अनुभूति में, जितने अनन्त-अनन्त गुण हैं, उन सबकी एक समय में व्यक्त पर्याय का अनुभव हो, इसका नाम (आत्मा की) अनुभूति कहा जाता है। आहाहा! ऐसी अनुभूति से भगवान (आत्मा) पाँचों ही शरीर से भिन्न है, अनुभूति से पाँचों शरीर से भिन्न है। (अनुभूति बिना) मात्र भिन्न-भिन्न करे ऐसा भिन्न नहीं है। ऐसा है भगवान! आहाहा!

यह तीन लोक के नाथ (तीर्थकरदेव) आहाहा! जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हो गये हैं, उनकी दिव्यध्वनि का क्या कहना! उस दिव्यध्वनि के कहनेवाले ये सन्त हैं। आहाहा! भगवन्त हैं। यहाँ आचार्य भगवान हैं। आहा! 'भग' अर्थात् आनन्द आदि लक्ष्मी। 'वान्' अर्थात् स्वरूप, वह भगवान है। भग अर्थात् लक्ष्मी सत् होती है, आनन्द आदि। उसका वान्, उसका स्वरूप है। वह आत्मा भगवान है।

शक्ति से तो (सभी) भगवान हैं, परन्तु आचार्य आदि तो व्यक्तिपने भगवान हो गये हैं। यह व्यक्ति अर्थात् प्रगटता; पर्याय में भगवान हुए हैं। आहाहा! प्रवचनसार में अन्तिम में पाँच गाथा है, उसमें तो ऐसा लिया है कि जो सन्त मोक्षमार्ग में आये, उन्हें तो हम मोक्षतत्त्व कहते हैं। ऐसा (लेखन में) है। पाँच रत्न की गाथा है। प्रवचनसार अन्त में है।

जिन मुनियों को आत्मज्ञान का-आनन्द का अनुभव हुआ-उग्र आनन्द का अनुभव



हुआ तो उन्हें हम तो मोक्ष ही कहते हैं, मोक्षतत्त्व ही कहते हैं। मोक्षमार्ग के तत्त्व में आये तो मोक्षतत्त्व ही कहते हैं। आहाहा!

**श्रोता :** चलते-फिरते सिद्ध।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हो, वह सिद्ध चलते कहाँ हैं? वे तो अन्दर में (लीन) है। हिलता है, वह तो जड़ है। अपनी पर्याय अन्दर गति करती है परन्तु अपनी क्रियावतीशक्ति के कारण हिलते हैं। यह शरीर हिला, इसलिए हिलते हैं - ऐसा है नहीं। आहाहा! यहाँ अन्दर प्रदेश हैं, ऐसे चलते हैं, वह अपनी क्रियावतीशक्ति के कारण कम्पन है और कम्पन है यहाँ, वह भी योग गुण का कम्पन है। इस शरीर के कारण उन्हें है नहीं और उनके कारण से शरीर में कम्पन आया ऐसा है नहीं, यह ऐसे... ऐसे.. इस प्रकार होता है, वह जड़ की पर्याय है, जड़ में होती है। सूक्ष्म बात है बापू!

यह नहीं कहा पहले (कि) पैर चलते हैं तो जमीन को छूते हैं, चलते-चलते, ऐसा है नहीं। भाई! कोई पदार्थ की विस्मयता ऐसी है। पैर जमीन को छूते हैं, बिल्कुल नहीं। (ऐसा नहीं) अपने आधार से, परमाणु में आधार नाम का गुण है, परमाणु में आधार, कर्ता (कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान) अधिकरण-आधार, छह कारक गुण हैं। वे (पैर) अपने आधार से चलते हैं; नीचे के आधार से नहीं। यह बात तो... बापू! जैन वीतराग का तत्त्व वह विस्मयकारी है। आहा...हा...!

अब आगे कहते हैं कि (जमीन को पैर) स्पर्श किये बिना चलता है (कोई कहेगा) पागल हैं, पागल हैं (परन्तु भाई!) सुन तो सही एक बार। आहा! यह तो कहा है न (समयसार) तीसरी गाथा में (आया है कि) प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्याय को स्पर्श करता है, पर को स्पर्श नहीं करता, वह आलिंगन नहीं करता; आहाहा! इसी तरह पैर नीचे की जमीन को स्पर्श नहीं करता-आलिंगन नहीं करता, स्पर्श नहीं करता। अड़ते - यह नहीं गुजराती भाषा में, तुम्हारे छूता नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि पाँचों ही प्रकार के शरीर भगवान आत्मा में नहीं हैं। आहाहा! आहाहा! कर्म, कर्म में रहे। अपना भगवान पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु (आत्मा की) अनुभूति हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति प्रगट हुई, तब तो वह पर से (परद्रव्यों से) मैं भिन्न हूँ, और

मुझसे वे भिन्न हैं - ऐसा अनुभव हुआ। आहाहा! मेरी अनुभूति में यह (शरीर) आया नहीं। कार्माण शरीर आदि मेरी अनुभूति में नहीं आया। आहाहा! समझ में आया?

भाई! यह तो सन्तों की-दिगम्बर सन्तों की वाणी है, यह कोई... कोई... आहाहा! अलौकिक, बापू! एक-एक पद समझना। यह अन्तर की चीज़ है। इन पाँच शरीर से भिन्न है। आहाहा!

**समचतुरस्रसंस्थान** (अर्थात्) एकदम समान शरीर, समचतुरस्र - चारों ओर से समान जो संस्थान, वह भी आत्मा में नहीं है, वह तो जड़ की पर्याय है। आहाहा! जैसे अपनी अनुभूति की पर्याय है-अनुभूति पर्याय है, वैसे यह समचतुरस्र पुद्गल की पर्याय है तो उससे मैं भिन्न हूँ। कब? कि मेरी अनुभूति की पर्याय से वह भिन्न है। इसलिए मुझसे वह भिन्न है। पुद्गल पर्याय से मैं भिन्न हूँ। आहाहा! ऐसी बातें! कुछ अभ्यास-थोड़ा बहुत चाहिए। द्रव्य-गुण-पर्याय, यह तो (कितनों ने ही) द्रव्य-गुण-पर्याय का नाम भी (नहीं सुना होगा)। नाम भी नहीं आता होगा। अब उन्हें किस प्रकार समझाना!

यह समचतुरस्रसंस्थान, यह पुद्गल जो द्रव्य है, उसके गुण है और उसकी समचतुरस्र पर्याय है। समचतुरस्र वह गुण नहीं। आहाहा! वह तीन (द्रव्य-गुण-पर्याय) आ गये। वह पुद्गलद्रव्य है। उसमें गुण शाश्वत् रहनेवाले... समचतुरस्रसंस्थान जो है, वह उसकी पर्याय है। वह पर्याय, पुद्गलपरिणाममय है। आहाहा! वे तीनों मुझमें नहीं हैं। मेरे तीन ऐसे हैं—क्योंकि मैं चैतन्यद्रव्य आनन्द हूँ, त्रिकाल आनन्दादि गुण त्रिकाल और मेरी पर्याय अनुभूति में आनन्द की पर्याय आयी, इन तीनों में मैं हूँ; उनमें (पुद्गल में) मैं नहीं। वे तीनों मुझमें नहीं। ऐसी सूक्ष्म बात! सन्तों ने-पंचम काल के सन्त, पंचम काल के श्रोता के लिये तो यह कहते हैं। कोई ऐसा कहे कि यह बात कोई चौथे काल के लिये.. तो यह किसे कहते हैं? आहाहा! पंचम काल के श्रोता को यह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**श्रोता** : ऐसा अप्रतिबुद्ध को समझाते हैं!

**पूज्य गुरुदेवश्री** : यह अत्यन्त अज्ञानी हो, उसे समझाते हैं। (समयसार) अड़तीस गाथा में ऐसा पाठ है। आहाहा! और वह पंचम काल का श्रोता अत्यन्त अप्रतिबुद्ध (अनादि) अज्ञानी को समझाया। पाठ ऐसा, ३८ गाथा, और वह समझ गया (और स्वयं

कहता है) अरे! मैं तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणमन करनेवाला, वह मेरी दशा है - ऐसा (पाठ है) ३८ गाथा में। श्रोता, हों! इसलिए कोई ऐसा कहे कि पंचम काल में अभी शुभ आचार होता है (शुद्ध नहीं होता)। वह श्रुतसागर है न कोई, उसने कहा है, पंचम काल में शुभयोग ही होता है - ऐसा कहते हैं। अर रर! समाचार-पत्र में आया है। अरे, भगवान! शुभयोग ही होता है, तब तो धर्म नहीं होता। (यहाँ तो) यह तो कहते हैं-अनुभूति! पंचम काल के श्रोता को भी अनुभूति (आत्मा की) होती है, करे तो.... कहनेवाले को तो है ही, (अनुभूति सम्पन्न) सन्त हैं। यह समचतुरस्रसंस्थान आत्मा में नहीं है।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)